वर्ष-5 अंक-2 अप्रैल-जून, 2015 मूल्य - ₹25

हिन्दी काव्य की संग्रहणीय त्रैमासिक पत्रिका

पारस परस

सृजन स्मरण

अल्हड़ बीकानेरी

जन्म 15 मई, 1937 निधन 17 जून, 2009

कैसा क्रूर भाग्य का चक्कर, कैसा विकट समय का फेर।
कहलाते हम- बीकानेरी, कभी न देखा- बीकानेर।।
जन्मे 'बीकानेर' गाँव में, है, जो रेवाड़ी के पास।
पर हरियाणा के यारों ने, कभी न हमको डाली घास।।
हास्य-व्यंग्य के कवियों में, लासानी समझे जाते हैं।
हरियाणवी पूत हैं, राजस्थानी समझे जाते हैं।।

वर्ष : 5 अंक : 2 अप्रैल - जून, 2015 रजि. नं. : यूपी एचआईएन/2011/39939

पारस परस

हिन्दी काव्य की समस्त विधाओं की संग्रहणीय त्रैमासिक पत्रिका

संरक्षक मंडल

डा. एल.पी. पाण्डेय

अभिमन्यु कुमार पाठक

अरुण कुमार पाठक

संपादक

डॉ अनिल कुमार

कार्यकारी संपादक

सुशील कुमार अवस्थी

संपादकीय कार्यालय

538 क/1324, शिवलोक

त्रिवेणी नगर तृतीय, लखनऊ

मो. 9935930783

Email: paarasparas.lucknow@gmail.com

लेआउट एवं टाइप सेटिंग

अभ्युदय प्रकाशन प्रा.लि., लखनऊ

मो. 9696433312

स्वामी प्रकाशक मुद्रक एवं संपादक डा. अनिल कुमार द्वारा प्रकाश पैकेजर्स, 257, गोलागंज, लखनऊ से मुद्रित कराकर सी-49, बटलर पैलेस कालोनी, जापलिंग रोड, लखनऊ से प्रकाशित।

पारस परस में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार संबंधित रचनाकारों के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का रचनाओं में व्यक्त विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद लखनऊ न्यायालय के अधीन होंगे। उपरोक्त सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।

अनुक्रमणिका

संपादकीय		2
श्रद्धा सुमन		
नया सवेरा, नई रोशनी, ...	डा. अनिल कुमार पाठक	4
कालजयी		
भारत-स्तवन	पारस नाथ पाठक 'प्रसून'	5
शारदा स्तुति	श्यामलाल शर्मा 'अल्हड़ बीकानेरी'	6
प्रिय आत्मन	विष्णु प्रभाकर	7
तुम जानों या मैं जानूँ	शम्भूनाथ सिंह	8
समय के सारथी		
उनका प्यार	योगेश प्रवीन	9
गज़लें	चन्द्रमणि त्रिपाठी	10
शब्दों से जुड़े नहीं, अर्थ	मधुकर अष्ठाना	11
गंगा महिमा	आचार्य दयाशंकर अवस्थी	12
स्नेह की गंध	नन्द कुमार मनोचा बारिज	13
हिन्दुस्तान हमारा	डा. शरद नारायण खरे	14
रचना अजर अमर हो जाये	रवीन्द्र कुमार राजेश	15
माँ से कौन महान	डा. किशोरी शरण शर्मा	16
अरविन्द असर की दो गजलें	अरविन्द असर	17
जीवन एक सचल जलधारा	डा. बैजनाथ सिंह	18
तुम दर्पण को देख रही हो	सुरेश सिंह चौहान'अवधेश'	19
पाँवों के निशां	आर पी शुक्ल	20
करो कामना पूरी	प्रेमचंद सैनी	21
विजय द्वार उत्सर्ग माँगता	डा. गौरी शंकर पाण्डेय 'अरविन्द'	22
क्यों मुझे भरमा रहे हो	शिवकुमार बिलगरामी	23
माँ ! तू ही देवी सीता है	अखिलेश निगम 'अखिल'	24
नारी स्वर		
मृदु तान बनी है	डा. मृदुला शुक्ला 'मृदु'	25
अनकहा दर्द	डा. अमिता दुबे	26
तूलिका सेठ की चार गजलें	तूलिका सेठ	27
तुम मेरे आधार	कंचन लता मिश्र 'कंचन'	28
नारी	रमा शर्मा	29
गाँव की माटी	पुष्पा सुमन	30
एक जिन्दगी	श्रीमती रश्मि कनौजिया	31
यादों का अम्बार	सिया सचदेव	32
कोख माँ की लजानी नहीं है	श्रीमती कृष्णा अवस्थी	33
हँसी	सुमन धींगरा	34
मेरा देश मुझे लौटा दो	डा. विद्याविन्दु सिंह	35
माँ	मनीषा जोशी	36
नवोदित रचनाकार		
आँखों से मोती बह गये	मनोज कामदेव	37
आज आखिर छला गया	सोमनाथ शुक्ल	38
ये बात कहो तुम भी	शुभम वैष्णव	39
आलोक यादव की तीन गजलें	आलोक यादव	40

निन्दक गुणग्राही नहीं होता

आजकल किसी भी विभूतिमान् व्यक्तित्व के बारे में ऊटपटाँग, ऊलजलूल, अमर्यादित टिप्पणियों का चलन सा हो गया है। किसी ऐसे व्यक्ति की निंदा या आलोचना, जो कि न तो ऐसे आलोचक का समकालीन है, न उसके क्रिया–कलाप का साक्षी रहा है और न ही तत्समय की स्थितियों – परिस्थितियों से पूर्णतः भिज्ञ हैं, किसी भी दृष्टि से औचित्यपूर्ण एवं प्रासंगिक नहीं कही जा सकती है। कदाचित् ऐसा कृत्य उसके पूर्वाग्रही होने या फिर स्वयं को चर्चा में लाने का प्रयास मात्र है। ऐसी निंदा या आलोचना का प्रतिकार करना भी आवश्यक प्रतीत नहीं होता क्योंकि क्रिया–प्रतिक्रिया की श्रृंखला में ऐसे लोगों की अनैतिक तथा सदोष मंशा ही फलीभूत होने की सम्भावना होती है। इसी सन्दर्भ में, मैं एक घटना का उल्लेख करते हुए अपनी बात रखना चाहता हूँ। कुछ दिन पूर्व तक मेरे एक मित्र इस बात से दुखी रहते थे कि अक्सर लोग उनकी निन्दा करते हैं। उन्होंने अन्य शुभचिंतकों से भी अपनी चिंता जाहिर की। कुछ शुभचिंतकों ने उन्हें संत कबीरदास के इस दोहे की याद दिलायी– ''निन्दक नियरे राखिये, आँगन कुटी छवाइ। बिन साबुन, पानी बिना, निरमल करै सुभाइ।।'' लेकिन वे इस दोहे के कथ्य से सहमत नहीं हो पा रहे थे क्योंकि उन्हें अपनी आलोचना से उतनी परेशानी नहीं थी जितनी इस बात से थी कि उनकी निन्दा ऐसे व्यक्ति करते हैं जिनके अन्दर कोई भी गुण नहीं है और न ही उनमें इसकी सामर्थ्य है। अपनी पीड़ा को व्यक्त करते हुए उन्होंने मुझे अपने गाँव–गिराँव की लोक परम्परा से चली आ रही, यह कहावत सुनाई ''सूपवा त सूपवा बोलइ, बोलइ चलनिया जेमे बहत्तर छेद" तात्पर्य यह है कि सूप (एक प्रकार का उपकरण जिससे अनाज आदि की सफाई की जाती है) बोले तो उससे कोई आपत्ति नहीं है लेकिन चलनी (एक उपकरण जो आटा आदि छानने के काम में प्रयुक्त होता है) बोले तो अच्छा नहीं लगता क्योंकि उसमें तो स्वयं बहुत ज्यादा छेद (दुर्गुण के संदर्भ में) हैं। उनके इस कथन का तात्पर्य यह था कि सूप का स्वभाव है सार तत्व को ग्रहण करना और थोथा (खोखला / सारहीन) को उड़ा देना जैसा कि सन्त कबीर ने ही कहा है कि "साधु ऐसा चाहिये जैसा सूप सुभाय। सार–सार को गहि रहै थोथा देई उड़ाय।।" लेकिन जब आलोचना अथवा निंदा करने वाला व्यक्ति चलनी की तरह दोषों से परिपूर्ण व्यक्ति हो तो निश्चित रूप से ऐसी निन्दा या आलोचना कष्टकारी होती है।

उनकी व्यथा सुनकर मैं शान्त रहा किन्तु वे इतने आहत थे कि बार–बार उद्वेलित होते जा रहे थे। मैंने उन्हें समझाने की कोशिश की कि अच्छे व्यक्तियों का लक्षण यह है कि वे लोगों की निन्दा या आलोचना को ध्यान में न रखें बल्कि अपने लक्ष्य प्राप्ति के लिए उचित पथ पर अग्रसर होते रहें। लोक व्यवहार में सामान्यतः सत्पथ पर चलने वाले व्यक्तियों को निन्दा का शिकार होना पड़ता है, इसलिए यदि हमने सोच–विचार कर एक उचित लक्ष्य का चुनाव किया है

और उस तक पहुँचने के लिए अपनाये गये साधन की शुचिता सतत् रखी है तो फिर हमें किसी भी निन्दा या आलोचना से नहीं डरना चाहिये। मेरे मित्र का मानना था कि उनके लक्ष्य न तो किसी परम्परा, मर्यादा या विधि के विरुद्ध हैं और न उसके लिए अपनाये गये साधन ही सामाजिक या नैतिक रूप में वर्ज्य हैं फिर भी न जाने क्यों लोग उनके पीछे पड़े रहते हैं? मैंने इस सम्बन्ध में विभिन्न विभूतियों तथा कई प्राचीन सांस्कृतिक परम्पराओं के संदर्भ–ग्रन्थों के सारतत्वों को उद्धृत करते हुए उनसे कहा कि निन्दा करने वाला अन्ततः स्वयं निन्दा का पात्र बन जाता है क्योंकि निन्दक व्यक्ति गुणग्राही नहीं होता जैसे एक कौआ विभिन्न सुस्वादु रसों का पान करने के बाद भी केवल गन्दगी से ही तृप्त होता है। फिर अचानक मुझे गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा विरचित "कवितावली" के उत्तरकाण्ड का एक पद याद आ गया जो मैंने उन्हें सुनाया, वह पद निम्नवत् है–

बबुर, बहेरे को बनाय बाग लाइयत,
रूँधिबे को सोइ सुरतरु काटियत हैं।
गारी देत नीच हरिचंद हूँ,दधीचिहूँ को,
आपने चना चबाइ हाथ चाटियत हैं।
आप महापातकी, हँसत हरिहर हूँ को,
आपु हैं, अभागी, भूरिभागी डाटियतु हैं।
कलि को कलुष मन मलिन किये महत,
मसक की पाँसुरी पयोधि पाटियत हैं।।

मेरे मित्र के चेहरे पर थोड़ा संतुष्टि का भाव दिखाई पड़ा क्योंकि इसके बाद उनकी प्रतिक्रिया उक्त पद की सबसे महत्वपूर्ण व प्रासंगिक पंक्ति, ''गारी देत.......................चाटियत हैं।'' की पुनरुक्ति के रूप में थी। वे मुस्कराकर बोले कि चना चबाकर हाथ चाटने वाले निकृष्ट लोग भी राजा हरिश्चंद्र (जिन्होंने स्वप्न मात्र से ही अपना सर्वस्व दान कर दिया) तथा दधीचि (जिन्होंने युद्ध में देवताओं की विजय/वृत्रासुर वध के लिए अपनी हड्डियों से वज्रास्त्र बनाने के लिए सहर्ष अपना प्राण त्याग कर दिया) की आलोचना करते हैं। किसी भी निन्दक या आलोचक के मुख को बन्द नहीं किया जा सकता क्योंकि यह उनका दैनिक कार्य है, उसके लिये ऐसा करना आनन्ददायक है यानि ऐसे लोगों के जीवन का यही एकमात्र ध्येय व लक्ष्य है और इस लक्ष्य तक पहुँचने का यही साधन भी है। मेरी उक्त दलील या विमर्श से मेरे मित्र संतुष्ट दिखे किन्तु इससे विद्वत्पाठकगण संतुष्ट हैं या नहीं इसके लिए उनकी प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा रहेगी।

शुभकामनाओं सहित,

डा० अनिल कुमार

नया सवेरा, नई रोशनी, लाये, मेरे बाबू जी

-डा. अनिल कुमार पाठक

पारस–परस कुधातु सुहाये,
ऐसे मेरे बाबूजी।
नया सवेरा, नई रोशनी,
लाये, मेरे बाबू जी।।
हम मिट्टी के लोदों को,
रूप अनोखा दे डाला।
अंकुराते जो मुरझाया,
जीवन उसको दे डाला।
मरुथल में जीवन–धारा–
बन आये, मेरे बाबू जी।
नया सवेरा, नई रोशनी,
लाये, मेरे बाबू जी।।

अन्धकार से दूर, ज्योतिर्मय,
सत्पथ दिखलाने वाले।
कठिन राह के दिग्दर्शक,
मंजिल तक पहुँचाने वाले।
हार कभी ना मानी, ऐसे–
योगी, मेरे बाबू जी।
नया सवेरा, नई रोशनी,
लाये, मेरे बाबू जी।।

केवल पिता नहीं वे मेरे,
पथदर्शक औ' मीत हैं।
इन अधरों की वाणी हैं, वे,
ये उनके ही गीत हैं।
ज्ञान और विज्ञान प्रवाहक,
प्यारे मेरे बाबू जी।
नया सवेरा, नई रोशनी
लाये, मेरे बाबू जी।।

❖❖❖

भारत-स्तवन

- पारस नाथ पाठक 'प्रसून'

माँ! तेरे दर्शन से एक बार।
खिलती हैं, कितनी मृदु–आशायें, खुलते हैं, शत–शत मुक्ति–द्वार, माँ....

सलिल तरंगें धोती चरणों को, मन्द समीरन पंखा झलता,
नीले नभ की छाया में है, मलयानिल ढोता, सुरभि–भार। माँ........

दूर क्षितिज के वातायन में कनक–थाल में दीप सजाये,
प्रकृति–वधू तेरे पूजन को गूँथ रही, नव–हीरक हार। माँ......

रवि अपलक आँखों से निरख रहा तेरी छवि बटोर न पाता,
शत–शत किरणों के हाथों से खींच रहा, वह मृदुल प्यार। माँ........

शान्ति उदधि की मृदु–शय्या पर शोभित तेरा यह उच्च भाल,
तेरी यह मूर्ति विजय की प्रतिमा, तेरा यह द्वार, अभय का द्वार। माँ....

काव्य–कला तुझसे मिलती है, अमर–विभूति तुम्हारी है,
सागर निज लोल तरंगों से करता, तेरे यश की पुकार। माँ.......

यह रूप तुम्हारा कितना सुन्दर, स्नेह भरा कितना पावन,
माँ! तेरे चरणों के नीचे तक, क्या पहुँच सकूँगा, एक बार। माँ......
माँ तेरे दर्शन से एक बार।

❖❖❖

शारदा स्तुति

– श्याम लाल शर्मा 'अल्हड़ बीकानेरी'

वर दे, वर दे, मातु शारदे,
कवि–सम्मेलन धुँआधार दे।

'रस' की बात लगे जब नीकी,
घर में जमे दोस्त नजदीकी,
कैसे चाय पिलाएँ फीकी,
चीनी की बोरियाँ, चार दे।।

'छन्द' पिट गया, रबड़छन्द से,
मूर्ख भिड़ गया, अक्लमंद से,
एक बूँद घी की सुगंध से,
स्मरण शक्ति मेरी निखार दे।।

'अलंकार' पर चढ़ा मुलम्मा,
आया कैसा वक्त निकम्मा,
रूठ गई राजू की अम्मा,
उसका तू पारा उतार दे।।

नए 'रूपकों' पर क्या झूमें,
लिए कनस्तर कब तक घूमें,
लगने को राशन की 'क्यू' में,
लल्ली–लल्लों की कतार दे।।

थोथे 'बिम्ब' बजें नूपुर–से,
आह क्यों नहीं उपजे उर से,
तनखा मिली, उड़ गई फुर–से,
दस का इक पत्ता उधार दे।।

टँगी खूटियों पर 'उपमाएँ',
लिखें, चुटकुलों पर कविताएँ,
पैने व्यंग्यकार पिट जाएँ,
पढ़ कर ऐसा मंत्र मार दे।।

हँसें कहाँ तक ही–ही–हू–हा,
'मिल्क–बूथ' ने हमको दूहा,
सीलबन्द बोतल में चूहा,
ऐसा टानिक बार–बार दे।।

❖❖❖

प्रिय आत्मन

- विष्णु प्रभाकर

धम–धमाधम, धम–धमाधम, धम–धमाधम।
लो आ गया, एक और नया वर्ष,
ढोल बजाता, रक्त बहाता,
हिंसक भेड़ियों के साथ।
ये वे ही भेड़िए हैं,
डर कर जिनसे–
की थी गुहार, आदिमानव ने
अपने प्रभु से।
दूर रखो हमें हिंसक भेड़ियों से
हाँ, ये वे ही भेड़िए हैं–
जो चबा रहे हैं, इन्सानियत इन्सान की।
और पहना रहे हैं, पोशाकें उन्हें–
सत्ता की, शैतान की, धर्म की, धर्मान्धता की।
और पहनकर उन्हें मर गया आदमी,
सचमुच।
जी उठीं वर्दियाँ और कुर्सियाँ
जो खेलती हैं, नाटक,
सद्भावना का, समानता का।
निकालकर, रैलियाँ लाशों की,
मुबारक हो, मुबारक हो।
नई रैलियों का यह नया युग
तुमको, हमको और उन भेड़ियों को भी,
सबको मुबारक हो।
धम–धमाधम, धम–धमाधम, धम–धमाधम।

❖❖❖

तुम जानों या मैं जानूँ

- शम्भूनाथ सिंह

जानी–अनजानी, तुम जानों या मैं जानूँ।
यह रात अधूरेपन की, बिखरे ख्वाबों की,
सुनसान खंडहरों की, टूटी मेहराबों की,
खण्डित चंदा की, रौंदे हुए गुलाबों की,
जो होनी,अनहोनी होकर, इस राह गयी,
वह बात पुरानी, तुम जानों या मैं जानूँ ।

यह रात चाँदनी की, धुँधली सीमाओं की,
आकाश बाँधने वाली खुली भुजाओं की,
दीवारों पर मिलती लंबी छायाओं की,
निज पदचिन्हों के दिये जलाने वालों की,
ये अमिट निशान, तुम जानों या मैं जानूँ।

यह एक नाम की रात, हजारों नामों की,
अनकही विदाओं की, अनबोल प्रमाणों की,
अनगिनत बिहँसते प्रातों, रोती शामों की,
अफरों के भीतर ही बनने मिटने वाली,
यह कथा कहानी, तुम जानों या मैं जानूँ।

यह रात हाथ में हाथ भरे अरमानों की,
वीरान जंगलों की, निर्झर चट्टानों की ,
घाटी में टकराते खामोश तरानों की ,
त्यौहार सरीखी हँसी, अजाने लोकों की,
यह बेपहचानी, तुम जानों या मैं जानूँ।

❖❖❖

उनका प्यार

कैसे भुला दूँ, उनका प्यार,
वो जो हुए हैं, अब दुश्वार।
क्यूँ नहीं सुनते, मन की पुकार,
वो जो हुए हैं, अब दुश्वार।

फूल से ताजे दिन वो सुहाने,
रंग भरे, वो गुजरे जमाने।
चारों तरफ खुशियों का साया,
जो कुछ चाहा, वो सब पाया।
गले लगे थे, सौ–सौ बार।
कैसे भुला दूँ, उनका प्यार।

दिन थे, अपने, राज था, अपना,
उनका दामन ताज था, अपना।
मीठे–मीठे सुख के सपने,
वो बस अपने थे, बस अपने।
क्या–क्या थे, अपने अधिकार।
कैसे भुला दूँ उनका प्यार।

ये दुनिया प्यारी लगती थी,
सुन्दर सुकुमारी लगती थी।
वो ही जीवन की आशायें,
मन की अकेली अभिलाषायें।
उनसे ही थे, रंग हजार।
कैसे भुला दूँ,उनका प्यार।

❖❖❖

चुपके-चुपके

- योगेश प्रवीन

किसके आँचल को छू के आयी, पवन,
चुपके–चुपके चुराने, मेरा मन।

चाँद के रथ से उतर आयी, किरन,
चुपके–चुपके चुराने, मेरा मन।

बस गया है, कोई, निगाहों में,
राह रोके खड़ा है, राहों में।
चाँदनी में नहाया, फूल बदन,
बन के खुशबू बसा है, बाहों में,
किसकी साँसों की बढ़ रही है, तपन,
चुपके–चुपके चुराने, मेरा मन।

कौन गीतों को दे गया, सरगम,
धीरे–धीरे जो छीनता है, गम।
किसके साये हैं मेरे सायें में,
किसकी आहट पे उठ रहे हैं, कदम।
छू रहा है कहीं धरती को गगन।
चुपके–चुपके चुराने, मेरा मन।

जब अकेले में मुस्कराओगी,
अपने सपनों का घर सजाओगी।
शर्म से लाख मुँह छुपाओगी,
मुझको अपने करीब पाओगी।
मन ही मन में कोई हल्की सी चुभन।
चुपके–चुपके चुराने, मेरा मन।

❖❖❖

गज़लें

- चन्द्रमणि त्रिपाठी

1

पहले जतन से बैठ के खुद को खंगालिए,
शीशे के घर पे, बाद में पत्थर उछालिए।

लोगों ने आह! सच को ही सूली चढ़ा के आज,
'हम होंगे कामयाब' ये सपने सजा लिए।

आखिर सितम में जाएँगे किसकी पनाह में,
गर आइनों ने हाथ में पत्थर उठा लिए।

हर वक्त जमाने में कमी ढूँढ़ते रहे,
थोड़ा सा वक्त खुद के लिए भी निकालिए।

2

दुनिया में कुछ पाओ–पियो, फिर देखो,
कुछ दुश्मन, कुछ यार बनाओ, फिर देखो।
मुश्किल है, पर ऐसी भी क्या मुश्किल है,
आओ! मिलकर जोर लगाओ, फिर देखो।
खुशियों में चार चाँद लग सकते हैं,
चलकर उठ, यार बनाओ, फिर देखो।
इश्क नहीं आसां, पर ऐसा भी क्या,
दिल ही तो है, आओ–जाओ, फिर देखो।
गम का भारी बोझ मजा भी देता है,
खुशी जरा– सी भी पाओ, फिर देखो।
पत्थर दिल में कही दरारें हों, शायद,
सोचो मत, बस टकरा जाओ, फिर देखो।
यह दुनिया पीछा पकड़े, इससे पहले,
दुनिया के पीछे पड़ जाओ, फिर देखो।

3

बस्ती के सभी लोग हैं, ऊँची उड़ान पे,
किसकी निगाह जाएगी, जलते मकान पे।
सच, आज अदालत में, लड़खड़ा के गिर पड़ा,
विश्वास बहुत था, उसे गीता–कुरान पे।
खामोश बैठ जाइए, मत चीखिये जनाब,
पहरे हैं, खासकर, यहाँ, ऊँची जबान पे।
रोटी नहीं नसीब, मशक्कत के बावजूद,
वैसे तो हमें नाज है, हिन्दोस्तान पे।
आँखों में इन्किलाब है, हाथों में डिगरियाँ,
तकदीर मुल्क की है, इसी नौजवान पे।
रहबर ही मुल्क के हैं, लुटेरे बने हुए,
है, किसको एतराज, मेरे इस बयान पे।

4

गरचे नहीं है, कोई बशर, दूध का धुला,
लगता है, फिर भी सारा शहर, दूध का धुला।
फिर मुझको अपनी याद के जंगल में छोड़कर,
अब जाने वो गया है, किधर, दूध का धुला।
अब कौन सुने अक्ल की ढेरों नसीहतें,
जब दिल को वो आता है, नजर, दूध का धुला।
जो वक्त की ठोकर पे है, पूछे कोई उससे,
है, कितना जिन्दगी का सफर, दूध का धुला।

❖❖❖

शब्दों से जुड़े नहीं अर्थ

शब्दों से जुड़े नहीं अर्थ,
यह कैसा हो गया, अनर्थ?

कितने विश्वास और–
कितनी आशायें,
सामने प्रयोगों के
शीश सब झुकायें।
सारा कुछ लिखा, लगे व्यर्थ।

सिमटी–सिकुड़ी–
आधी बात है, अधूरी,
अन्तर से अधरों की–
गई नहीं दूरी।
कथ्य नहीं हो सके, समर्थ।

सुलझती न सम्प्रेषण की
कठिन समस्या,
गीतों के अम्बर में
घिरी अमावस्या।
मूल वृत्तियाँ रहीं, तदर्थ।

❖❖❖

परिचय के बोझ झुके कंधे

– मधुकर अष्ठाना

परिचय के बोझ झुके कंधे,
कितने असमर्थ, बने अंधे।

लिजलिजे विकल्पों की भीड़ में,
दृष्टियाँ अधूरी हर नीड़ में।
बाँध रहीं पग–पग पर बंधे।
कितने असमर्थ, बने अंधे।।

संकल्पित सम्बन्धों से लड़े,
सीमाओं प्रतिबन्धों में जड़े।
जोड़ने निरर्थक से धंधे,
कितने असमर्थ, बने अंधे

पीड़ा के नाम लिखा, हाशिया,
बँधुआ सब, समय बड़ा माफिया।
पग–पग दुहरे–तिहरे फंदे।
कितने असमर्थ, बने अंधे।।

❖❖❖

गंगा महिमा

- आचार्य दयाशंकर अवस्थी

1

शुचि गंग–तरंग महान अघी–
अघ को क्षण मात्र छुये हरती।
हरती, भव–शूल समूल सदा,
सुख–सम्पति स्नेहमयी करती।
करती, सबकी मनोकामना पूर्ण,
नहीं, दुर्भाव ह्रदय धरती।
धरती–तल पाप विनाशक, पुण्य–
भयो थल, धूरि जहाँ परती।

2

करके अघपुंज विनाश सदा,
भवसागर पार उतारती हो।
सुन कर दुखिया जन की विनती,
बिगड़े सब कार्य सँवारती हो।
शरणागत के दुख–दानव को,
चिरकाल, सदैव पछारती हो।
तन से, मन से, धन से अति दीन–
दशा निज भक्त सुधारती हो।

3

भयभीत भये यमराज कहें,
नहिं कोई रहा अब या नगरी।
नगरी, दिन दूनी बसी सुर की,
जब से शुचि धार, धरा लहरी।
लहरी, अघ–पुंज नसावन को,
यमलोक दुखी सब हैं, प्रहरी।
प्रहरी, सुर लोक लिये चलते,
जिसने तव धार ध्वजा पकरी।

❖❖❖

स्नेह की गंध

- नन्द कुमार मनोचा वारिज

भावना के बिखेरे, किसी ने सुमन, स्नेह की गंध साँसें लुटाने लगीं।
धूप, पहली सुबह की, सजीली चढ़ी,
रश्मियों की सवारी छबीली चढ़ी,

बंधनों में बिहँसता अनायास मन, नयन में ज्योतियाँ झिलमिलाने लगीं।
भावना के बिखेरे किसी ने सुमन, स्नेह की गंध साँसें लुटाने लगीं।।

भेद खोलें दुपहरी की परछाइयाँ,
सो रही नींद में मुफ्त पुरवाइयाँ,

ठहर जैसे गया, वक्त का गौर तन, सावनी बिजलियाँ पास आने लगीं।
भावना के बिखेरे किसी ने सुमन, स्नेह की गंध साँसें लुटाने लगीं।।

दूरियाँ छोड़ दी, राह के मीत ने,
प्रेरणा फूँक दी, साँझ के गीत ने,

भर गया तारकों से विशद उर–गगन, चाँदनी रूप की मुस्कराने लगी।
भावना के बिखेरे किसी ने सुमन, स्नेह की गंध साँसें लुटाने लगीं।।

रागिनी रात की गुनगुनाती चली,
पुतलियाँ आँख की रंगराती चलीं,

रुक न पाए, उठे, वे चरन के परन, एक सिहरन मगन थरथराने लगी।
भावना के बिखेरे किसी ने सुमन, स्नेह की गंध साँसें लुटाने लगीं।।

❖❖❖

हिन्दुस्तान हमारा

- डा. शरद नारायण खरे

आओ, हम सब मिलकर गायें, भाव में भर, यह गीत।
जाति, धर्म औ वर्ग पे होवे, मानवता की जीत।।
दसों दिशाओं में गुंजित है, गौरवगान हमारा।
सारे जहां से अच्छा, प्रियवर! हिन्दुस्तान हमारा।।

संत–महात्मा महिमा गायें, देव दरस को हर पल आएँ।
आओ, हम उस देवभूमि की, माटी अपने शीश लगाएँ।।
वेद–पुराणों में स्तुति है, उस धूली को नमन हमारा।
सारे जहां से अच्छा, प्रियवर! हिन्दुस्तान हमारा।।

सत्य–धर्म का महका चंदन, न्याय–नीति का है, अभिनंदन।
मानवता औ दया–नेह का, हर अंतर्मन में अभिवंदन।।
उस माटी की पूजा में हम, अर्पण कर दें, जीवन सारा।
सारे जहां से अच्छा, प्रियवर! हिन्दुस्तान हमारा।।

कश्मीर–द्रास और कारगिल, सब में आन हमारी।
पर्वत–नदियों–वनों में बसती, अनुपम शान हमारी।।
विविध वेशभूषा–संस्कृति में, एकता गान हमारा।
सारे जहां से अच्छा, प्रियवर! हिन्दुस्तान हमारा।।

ज्ञान और विज्ञान में अव्वल, लोकतंत्र के हम संरक्षक।
कला–खेल में हरदम आगे, जीवन–मूल्यों के हम वाहक।।
शान हिमालय, आन हिमालय, हर सपूत ने अब हुंकारा।
सारे जहां से अच्छा, प्रियवर! हिन्दुस्तान हमारा।।

❖❖❖

रचना अजर, अमर हो जाये

- रवीन्द्र कुमार राजेश

कुछ ऐसा रचने का मन है,
रचना अजर, अमर हो जाये।
गतिमयता ही नहीं रहे जब लगता हो ठहरा –सा जीवन,
करता हो, अवरुद्ध प्रगति को, कुंठाओं से उद्वेलित मन।
कुछ ऐसा करने का मन है,
जन–जीवन भास्कर हो जाये।
जीवन–मूल्य लिखे कितनों ने, किन्तु उन्हें किसने अपनाया,
ग्रहण लगा शाश्वत मूल्यों को, पड़ी स्वार्थ की कलुषित छाया।
कुछ ऐसा लिखने का मन है,
लेखन अविनश्वर हो जाये।
कहने हो तो कितना कुछ है, कौन मगर कहने देता है?
सत्य विवश हो रहा, कहाँ,जग सच को सच रहने देता है?
कुछ ऐसा कहने का मन है,
वाणी मौन, मुखर हो जाये।
पढ़ी पोथियाँ जाने कितनीं, मैं क्या हूँ, यह जान न पाया?
इस धरती पर आकर मैंने क्या कब खोया, क्या है, पाया?
कुछ ऐसा पढ़ने का मन है,
बुद्धि–विवेक प्रखर हो जाये।
गढ़ने को तो मूर्तिकार ने गढ़ दीं प्रस्तर की प्रतिमायें,
स्वर्णकार ने आभूषण गढ़ दर्शायीं उत्कृष्ट कलायें।
कुछ ऐसा गढ़ने का मन है,
प्रतिमा परमेश्वर हो जाये।।

❖❖❖

माँ से कौन महान?

- डा. किशोरी शरण शर्मा

भैया! मुझे बता दो, जग में माँ से कौन महान?
माँ ने मुझको जन्म दिया है, माँ ने मुझको पाला,
माँ ने दूध पिलाकर अपना रक्त नसों में डाला।
मानस की वह कथा सुनाती, गीता नित्य पढ़ाती,
गुड़ियों का वह ब्याह रचाकर जग का ज्ञान कराती।
है, कोई जो माँ बन जाये, कैसा यह बलिदान?
भैया! मुझे बता दो जग में माँ से कौन महान?
बेटा हो या बेटी अपनी माँ जब गले लगाती,
अपनी दुनिया कहकर उसको जाने क्या सुख पाती।
माँ का आह्लादित उर होता सुन, शिशु की किलकारी,
परम सत्य मुस्कान अधर पर जीवन की फुलवारी।
दोनों का अनुराग परस्पर मूल सृष्टि का ज्ञान।।
भैया! मुझे बता दो जग में माँ से कौन महान?
पहले मानव जन्म लिया फिर धर्म–जाति बन पाये,
इतिहासों के कोरे पन्ने शोध कथा लिखवाये।
भौगोलिक व्यवधान बीच में मानव को बिलगाये,
अपने–अपने देश–काल की मानव गाथा गाये।
धरती से लेकर अम्बर तक माँ देती है, ज्ञान।।
भैया! मुझे बता दो जग में माँ से कौन महान?
कोई हिन्दू, कोई मुस्लिम, कोई सिख, ईसाई,
धर्म पंथ बहुतेरे फिर भी एक लक्ष्य अनुयायी।
सत्य, अहिंसा के सब गायक, सब का एक किनारा,
यों समझो चौराहे पर ज्यों पथ को मिले सहारा।
माँ तो सबकी माँ होती है, शाश्वत स्नेह विधान।।
भैया! मुझे बता दो जग में माँ से कौन महान?

❖❖❖

अरविन्द असर की दो गजलें

(एक)

हमसे सुना न जायेगा, इस दास्तान को,
धरती निगल गयी थी, कभी आसमान को।
माना कि हर लिहाज से विकसित हैं, ये नगर,
हम तो तरस रहे हैं, मगर एक पान को।
ऊँची इमारतों के सिवा, अब जगह कहाँ,
अच्छा है, अब भुला ही दें, आँगन को, लान को।
ऐसी भी एक शक्ति यहाँ नारियों में थी,
जिसने छुड़ाया, मौत से भी सत्यवान को।
सरकार ही न जब करे उनपे रहम, तो फिर,
ले जायें ये गरीब, कहाँ जिस्मों–जान को।
ऐसी भी प्रार्थना कभी भगवान से करें,
अच्छा रखे, सदा मेरे हिन्दोस्तान को।
लौटे हैं, अब तो फिर न उन्हें घोसला मिला,
पंछी निकल गये थे जो ऊँची उड़ान को।
आता है, मेरे जी में कभी ये करूँ 'असर',
लेंटू जमीं पे और मिटा दूँ, गुमान को।

(दो)

किरन रोशनी की लुटाता है, दीपक,
घरों से अँधेरा भगाता है, दीपक।
निराशा कभी कुछ न मेरा करेगी,
अभी आस का टिमटिमाता है, दीपक।
विजय प्राप्त करके कोई आ रहा है,
कि दहलीज पर जगमगाता है, दीपक।
हवन कर दो, जीवन भलाई के पथ पर,
ये बातें सभी को बताता है, दीपक।
हवायें भले तेज हों, फिर भी यारों,
निशा को ऊषा से मिलाता है, दीपक।
मेरी लौ से इक और दीपक जला लो,
ये बुझने से पहले बताता है, दीपक।
न इससे बुरा कर्म दूज है, कोई,
'असर' कोई भी यदि बुझाता है, दीपक।

❖❖❖

जीवन एक सचल जलधारा

जीवन एक सचल जलधारा,
सहसा किन्तु लुप्त हो जाती।
जीवन एक रजत कणिका है,
अनजाने क्षण में खो जाती।।

क्या अपेक्ष्य है, क्या गौरवमय,
क्या उद्‌देश्य, लक्ष्य जीवन का?
व्यक्ति प्रत्येक स्वयं प्रेरक है,
करता है, निर्णय निज मन का।।

अकस्मात कुछ घटनायें या,
कुछ व्यक्तित्व सहायक होते।
कुछ बाधायें संकट आते,
जिन पर भाग्य कोस, हम रोते।।

श्यामल, धवल परिस्थितियाँ यें,
भाग्य–अभाग्य निदेशित करतीं।
निर्बल जन को हत–उत्साहित,
कर उनका संबल, बल हरतीं।।

दृढ़ निश्चय, चरित्र वाले जो,
कठिन अगम पथ पर हैं, चलते।
अरे! हाय दुर्भाग्य हमारा,
हम कर हाथ, नहीं वे मलते।।

सतत परिश्रम और पराक्रम–
से अभाग्य पर भी जय पाते।
प्रभु की भी प्रभुता मिल जाती,
जो हिम्मत से कदम बढ़ाते।।

जीवन के वरदान

- डा० बैजनाथ सिंह

जीवन में वरदान बहुत हैं,
और बहुत अभिशाप।
ईश कृपा से अभिशापों का,
मिट जाता संताप।।

दुःख से पिण्ड छुड़ाना चाहें,
संभव नहीं कदापि।
शक्ति अपरिमित सह लेने की,
देते ईश, तथापि।।

सुख–सम्पदा विपुल वैभव में,
कभी न हो अभिमान।
ये क्षण–भंगुर नाशवान है,
है, बुलबुला समान।।

सब ॠतुओं में मोहकता है,
मादक इनका रूप।
आत्म विभोर बनाने वाला,
अद्‌भुत और अनूप।।

धूप, वनस्पति का जीवन है,
वृष्टि–सृष्टि निर्माण।
इनके द्वारा होता आया–
है, जग का कल्याण।।

❖❖❖

तुम दर्पण को देख रही हो

तुम दर्पण को देख रही हो,
दर्पण तुम को देख रहा है।
करता है, अनुकरण तुम्हारा,
तुम हँसती, यह हँस देता है।
तुम्हें तुम्हारे ही भावों से,
अपने वश में कर लेता है।
फेंकी हुई, तुम्हारी आभा,
वापस तुम पर फेक रहा है।

देख रही हो, इसको अथवा,
रह–रह निज को निरख रही हो।
इसे कसौटी मान–जान कर,
अपना कंचन परख रही हो।
यह भी तुम्हें हृदय में भरकर,
अपना तन–मन सेंक रहा है।

इसके अन्दर तुम्हीं खड़ी हो,
फिर विस्मय सा क्या करती हो।
मिलो उरोज–सरोज मिलाकर,
यूँ अपने से क्यूँ डरती हो।
कोई नहीं तुम्हारे पीछे,
छिपकर तुमको देख देख रहा है

❖❖❖

निर्मोही को प्यार न देना

– सुरेश सिंह चौहान 'अवधेश'

निर्मोही को प्यार न देना,
अपना उसे दुलार न देना।

प्रेमी का है, पथ ही न्यारा,
चातक को है, चाँद ही प्यारा।
मन को ही जो विचलित कर दे,
ऐसा कुछ आधार न देना।

जिसने मन भँवरे सा पाया,
उसको एक सुमन कब भाया।
इन्दीवर से उर में उसको,
कोमल कारागार न देना।

कल–कल जीवन बहती धारा,
उसमें है, संसार हमारा।
जीवन को ही जो उलझा दे,
ऐसा कुछ संसार न देना।

❖❖❖

पाँवों के निशां

यूँ तो हर पाँव,
अपने निशान छोड़ता है–
पर हर निशान,
स्थाई और अनुकरणीय नहीं होता।
क्या कभी मुड़कर तुमने देखा है–
कि तुमने–
अपने पाँवों के निशां–
कहाँ छोड़े थे?
मिट्टी के ढेर या–
रेत की कगार में?
यदि थे, रेत पर–
तो हवा ने मिटा दिए होंगे,
यदि थे, मिट्टी पर–
तो बौछार से धुल गये होंगे।
वह देखो मेरे पैंरों के निशान–
सदियों बाद आज भी चट्टानों पर अंकित हैं।
ऐसे निशां यूँ ही नहीं बनते
यह मात्र चलने से नहीं,
चलने की शैली से बनते हैं।
और जिस दिन–
तुम्हें चलने की शैली आ जाएगी,
मेरे दोस्त!
तुम मुझसे ईर्ष्या नहीं करोगे।

❖❖❖

बेच के आया

- आर. पी. शुक्ल

शाम–सबेरे, जिन गीतों को,
खुद लिखता, खुद गाता आया।
आज उन्हीं गीतों को शहर में,
पेट की खातिर बेच के आया।

तन को तपाकर, मन को जलाकर,
खून से एक–एक हर्फ लिखा था।
आज उन्हीं भावों को अपने,
फुटपाथों पर बेच के आया।

सत्य गुना और सत्य कहा पर,
सत्य की भाषा कौन सुने।
झूठ की नगरी में आखिर, मैं,
सत्य–सलोना बेच के आया।

जिस दुनियाँ में नींद बिके नित,
देह बिके, नर–वर बिक जाते।
आज उसी बाजार में अपनी,
कंचन काया बेच के आया।

अग्नि परीक्षा कब तक होगी,
राम तुम्हारी धरती पर?
बहुत विवश हो, आज मैं अपने,
कलश–कमण्डल बेच के आया।

❖❖❖

करो कामना पूरी

- प्रेमचंद सैनी

सुनता हूँ, तू हर – रज कण में बसा हुआ,
मैं, इस रज का चन्दन–तिलक लगाऊँगा।
मंदिर के भीतर, हर द्वारे,
जुड़ते, युवा–वृद्ध महिलायें।
पूजा–अर्चन–थाल सजाकर,
गुंजित करते भक्ति ऋचाएँ।
तू मेरे अन्तर्मन में है, रमा हुआ,
अपनी तुतली भाषा तुझे सुनाऊँगा।
मैं इस रज का चन्दन–तिलक लगाऊँगा।
तूफानों में घायल होकर,
यह जीवन रसहीन बना है।
अब तो करो कामना पूरी,
चूर–चूर मेरा सपना है।
बहता रहता नीर नयन में भरा हुआ,
मैं इस जल से तुझको भी नहलाऊँगा।
मैं इस रज का चंदन–तिलक लगाऊँगा।
इन प्रश्नों के समाधान–हित,
खोजी, करुणा की परिभाषा।
सारी मर्यादाएँ लाँघीं,
मिटी नहीं प्रभु–दर्शन–आशा।
यह अनुरागी चित्त तुझी में लसा हुआ,
नित वन्दन से तेरा द्वार गुंजाऊँगा।
मैं इस रज का चन्दन–तिलक लगाऊँगा।
किसी वस्तु की चाह नहीं अब,
सह न सकूँगा यह अंधियारा।
स्वर्णिम भोर–किरण, मैं देखूँ,
आकर, हर लो तम यह सारा।
तेरा रूप अलौकिक मन में बसा हुआ,
आशिष पा छंदों का थाल सजाऊँगा।
मैं इस रज को चन्दन–तिलक लगाऊँगा।

❖❖❖

विजय द्वार उत्सर्ग माँगता

- डा. गौरी शंकर पाण्डेय 'अरविन्द'

हम शिकार छलना–ललना के, कैसे जीवन–तरणि चलेगी,
गलत मान–मूल्यों के पथ पर, जब हम, कैसे राह कटेगी।
सूट–बूट कोठी, कारों से, पार मित्रवर! कुछ तो सोचो,
आडम्बर हैसियत कसौटी, यदि सच नहीं, आचरण रोको।

माना, इच्छाओं के कानन, मत भटको गाँधी के पूतों,
दो पल का सुकून भी दुर्लभ, हाय जिन्दगी!गुनो सपूतों।
झेलोगे, एकाकीपन का दंश, कहाँ तक, फिर–फिर सोचो,
दाँव–पेंच 'लाइसेन्स' घूस के, चक्रव्यूह से बचना सीखो।

सुविधा भरी जिन्दगी, गुनिये, सच्चाई यह भ्रमित लालसा,
आत्म दर्द को पहचानों प्रिय, उक्त आचरण मरण काल सा।
ग्लानि दंश की दशा न आये, हवस दानवी, सच पहचानों,
मकड़जाल फिर–फिर ना उलझो, जीवन मर्म मूल्य को जानो।

सज्जित फ्लैट, बैंक की पूँजी, क्या असली सुख–शान्ति जनेंगे,
क्या अनन्त कामना समुन्दर, असली तुष्टि कलश अरपेंगे।
मत भटको, व्याकुल पंछी से उड़ना, अंत नियति है, तेरी,
रचते–गढ़ते थकना–चुकना, वेद शास्त्र की सीख घनेरी।

यदि बुजुर्ग संवेदन अरपें, मंत्रधार उनके, तन वारें,
त्यागें स्वार्थ और निजपरता, हो कृतज्ञ, माँ धरणि पखारें।
जीवन की यह कटु विडम्बना, वह हिसाब लेता बहता है,
प्राणों का जोखिम पग–पग पर, यह यथार्थ ढोता चलता है।

हर सवाल हल करना, जीवन, इसकी डगर कंटीली क्लेशी,
उलझे तारों बुनी कहानी, यह बहुधा कंटक आश्लेषी।
मत डूबें, आलस के अम्बुधि, अनुकूलें धारा साहस धर,
हर कुत्सित उखाड़कर फेंके, हर–हर भजते बढ़ें धरा पर।

जब–जब विपदाएँ आमुख हों, धधकें ज्वालामुखी शिखा–सा,
विजय–द्वार उत्सर्ग माँगता, सखे! आचरें नहीं, मृषा–सा।
आलिंगन हो क्लेश लास का, वेद उपनिषद् सीख सुहानी,
जीवन की घाटी–घाटी में, पैंठे–विहरें, यही जवानी।

❖❖❖

क्यों मुझे भरमा रहे हो

- शिवकुमार बिलगरामी

क्यों मुझे मोनालिसी' मुस्कान से भरमा रहे हो,
यह बताओ, तुम कि क्या तुम भी मुझे ठुकरा रहे हो।

क्या लगा मुझ में असुंदर,
तन, हृदय, मन, दृष्टि मेरी?
धैर्य, साहस, मौन, क्रंदन,
या कि मेरी लट घनेरी।।

प्रश्न का उत्तर मुझे दो, मित्र! क्यों सकुचा रहे हो।
क्यों मुझे 'मोनालिसी.....

रूप का अभिप्राय भी क्या,
अब त्वचायें तय करेंगी।
प्रेम की अभिव्यक्ति भी क्या,
अब भुजाएँ तय करेंगी।।

किस लिए मुझसे विमुख हो, किसलिए कतरा रहे हो।
क्यों मुझे 'मोनालिसी'......

रूप से बाधित हुई हैं,
प्रेम यज्ञों की ऋचाएँ।
रात में जगती कहाँ हैं,
भोर की संभावनाएँ।।

क्यों भ्रमित होकर स्वयं को, तंत्र में उलझा रहे हो।
क्यों मुझे 'मोनालिसी'...

❖❖❖

माँ! तू ही देवी सीता है

– अखिलेश निगम 'अखिल'

बच्चे की भगवद्गीता है, माँ! तू ही देवी सीता है।
तेरी ममता की छाँव तले, शिशु का निर्मल किलकारी,
नन्हीं कोपल का तू जीवन, तू उसकी खुशियाँ सारी।
रोते बच्चे की तू लोरी, खुद पलना बन जाती है,
झूम–झूमकर, घूम–घूमकर, झूला स्वयं झुलाती है।
बच्चा करता दुग्धपान तब, मानों अमृत पीता है।
माँ तू ही देवी सीता है...
आँखों ही आँखों में जगकर, सारी रात गवाँ देती हो,
अपना सारा सुख देकर माँ, शिशु का दुख हर लेती हो।
रेगिस्तानी जीवन में तू, झरने की शुचि धारा है,
स्वार्थ भरे इस भँवर–चक्र में, तू ही एक सहारा है।
बिना तुम्हारे जीवन–घट यह, बिल्कुल रीता–रीता है।
माँ! तू ही देवी सीता है...
माँ, तू गालों की पप्पी है, तू बच्चे की हिचकी है,
प्रतिपल तेरी पूजा करती, हर बच्चे की सिसकी है।
तू ही जूही, तू ही चंपा, तू ही केसर–क्यारी है,
हाँ, तू ही सचमुच ईश्वर है, सारे जग से न्यारी है।
तू सागर, तू अम्बर है, तू पृथ्वी परम पुनीता है।
माँ! तू ही देवी सीता है...
बुलबुल तू ही, मैना तू ही, तू कोयल की बोली है,
बच्चों के जीवन की मेंहदी, प्यारी कुमकुम रोली है।
ईश्वर बसते हैं, नयनों में , उर में मथुरा, काशी है,
तेरी ममता के अमृत बिन, जीवन लगता फाँसी है।
तेरे बिन बच्चों का जीवन, रोते–रोते बीता है।
माँ! तू ही देवी सीता है...
बच्चे की चिंता में प्रतिपल, घुटती–घुटती रहती है,
उसके सुख के खातिर ही तू निशिदिन जीती–मरती है।
तुझ बिन है, यह सृष्टि अधूरी, लगती खाली–खाली है,
बिन तेरी ममता–मिसरी के, प्यार जहर की प्याली है।
तेरी गोद बिना हर मानव, मरते–मरते जीता है।
माँ! तू ही देवी सीता है...

❖❖❖

मृदु तान बनी है

हिन्द है, हिन्दी है, भाषा हमारी,
और एक ही मानव–जाति भी है।
ऊँच–नीच का भेद जहाँ है, नहीं,
शुचि, भारतभूमि हमारी ही है।।

देववाणी जननि सब भाषन की,
जामें हिन्दी–सुता बहु फूली–फली है।
छवि–छंदन मँह छहराई कबहुँ,
कवि–मानस की पटरानी बनी है।

यह बाल औ वृद्ध सबै जन को,
रसपान कराइ कै तृप्त भई है।
निर्जीवन को 'मृदु' जीवन–रस,
और भारत की यह शान बनी है।

चपला बनि कै कहुँ तड़कि गयी,
और वीरन संग भवानी भई है।
'मृदु' पुष्पित हार कबहुँ बनि गयी,
कवि लोगन की पतवार बनी है।

एकत्व कौ मंत्र सिखाय सदा,
हिन्दी भारत कै रखवार बनी है।
हिन्द अमर, हिन्दी भाषा अमर,
चहुँ ओर यही धुनि गूँजि रही है।

❖❖❖

बही एक रसधारा है

– डा मृदुला शुक्ला 'मृदु'

कल–कोकिल–कूजनि भारति की,
मन–बीनन की मृदु तान बनी है।
जग महँ चहुँ ओर सुकीरति देखि कै,
भारत की मृदु कोख तरी है।

यहाँ न कोई हिन्दू–मुस्लिम,
सिक्ख–पारसी–ईसाई।
केवल भारतीय हैं, हम सब,
सभी यहाँ भाई–भाई।

जैसे हमको प्यारा मन्दिर,
वैसे, मस्जिद–गिरिजाघर।
मस्जिद का है, खुदा वही जो,
मन्दिर–गिरिजा का ईश्वर।

आपस का यह भेद–भाव है,
केवल ऊपर का अन्तर।
इसके पीछे प्रेम–भाव का,
लहराता रहता, सागर।

पूरब–पश्चिम–उत्तर–दक्षिण,
बही एक रसधारा है।
एक हमारा ध्वजा तिरंगा,
एक हमारा नारा है।

❖❖❖

अनकहा दर्द

- डा. अमिता दुबे

हम उड़ना चाहते हैं,
ऐसी उड़ान,
जहाँ मिले हमें,
अपने सपनों का आकाश।
हम चलना चाहते हैं,
ऐसे रास्ते पर,
जहाँ मिले हमें,
अपनी सफलताओं का प्रकाश।
हम देना चाहते हैं,
बच्चों को समतल जमीन,
जहाँ मिले उन्हें,
अपनी महत्वाकांक्षाओं का विकास।
हम देना चाहते हैं,
अपनी संतति को ऐसा आकाश,
जहाँ मिले उन्हें,
वो सब कुछ, जो हमें नहीं मिला।
ड्राइंगरूम–टेरिस–लाबी,
यहाँ तक कि रसोई घर भी,
सुन्दर 'फूलदार 'चमकदार पौधें से,
विभिन्न आकार–प्रकार के–
गमलों में लगे, ये पेड़–
लगते हैं, आकर्षक,
कोई तो इन्हें देखता हैं,
ललचायी निगाह से भी।
क्योंकि
,ये पौधे हैं, नीम के,
आम, अनार, अमरूद, बरगद के, पीपल के,
कभी–कभी कैकटस के भी।
अपनी जमीन से बिछुड़े पेड़–
हमारे आँगन, बरामदे,
टेरिस –लाबी की शोभा बन,
मुस्कुराते हैं।
बिल्कुल,
उस चिड़िया, तोता, मैना की तरह,
जिसे पता है, आकाश बहुत ऊँचा है
लेकिन उड़ने को पंख नहीं हैं।
कभी ये पंख प्यार से कतर दिये जाते हैं,
और कभी बेरहमी से नोच भी दिये जाते हैं।
हम बनाते हैं,
कद्दार पेड़ों को बोनसाई
और सजाते हैं–
अपना घर, ड्राइंगरूम, टेरिस, लाबी,
रसोईघर और किचन–गार्डन,
पाते हैं, प्रशंसा
जो हमें देती है, संतोष, सौन्दर्य, बोध के लिए
हम करते हैं, गर्व,
बिना महसूस किये,
उस अनकहे दर्द को–
जो अपनी जमीन से बिछुड़ने का होता है।

❖❖❖

तूलिका सेठ की चार गजलें

(एक)

दिल में कोई भी हलचल नहीं है,
चैन क्यों एक भी पल नहीं है।
धूप में छाँव देता नहीं जो,
वो मेरी माँ का आँचल नहीं है।
हर समय प्यार के गीत गाता,
क्या ये दिल मेरा पागल नहीं हैं।
चोट पर चोट सह ही न पाए,
मेरा दिल इतना कोमल नहीं है।
मेरी आँखों में गम का धुँआ है,
ये सकोरे का काजल नहीं है।
बाढ़ बनके ही बादल जो आए,
मेरी नजरों में बादल नहीं है।
'तूलिका' क्या हुआ है, हवा को,
आज इतनी वो चंचल नहीं है।

(दो)

मुस्कराओ तुम, मैं रोने के लिए बेचैन हूँ,
दूर तक मशहूर होने के लिए बेचैन हूँ।
आप मुझसे फासला रखना किसी दिन छोड़ दें,
आपका दामन भिगोने के लिए बेचैन हूँ।
आपको आता नहीं तूफां उठाने का हुनर,
अपनी कश्ती खुद डुबोने के लिए बेचैन हूँ।
कोई मुझको इस जहां में ढूँढ़ने वाला तो हो,
मैं तो हर पल खुद ही खोने के लिए बेचैन हूँ।
चाहती हूँ ख्वाब में देखूँ तुम्हें अपने करीब,
नींद तो आए, मैं सोने के लिए बेचैन हूँ।
कुछ नहीं आता मुझे करना इजाजत के बगैर,
आँसुओं से दाग धोने के लिए बेचैन हूँ।
प्यार बनकर लहलहाए, हर इक दिल में 'तूलिका',
उस गजल का बीज बोने के लिए बेचैन हूँ।

(तीन)

हमें प्यार का इक तराना मिला है,
यह यकीं कीजिएगा, खजाना मिला है।
हमारी तुम्हारी मुलाकात से ही,
परखने का तुमको बहाना मिला है।
न हम तुमको देंखे, न तुम हमको देखो,
मुकद्दर से ऐसा जमाना मिला है।
न मंजिल नजर में, न रस्ता है, कोई,
कहाँ जाके हमको, ठिकाना मिला है।
मेरे दिल की जानिब है, तीरों की वारिश,
किसी की नजर को निशाना मिला है।
गले मिलके रोने की चाहत है, दिल में,
बड़े दिन में रिश्ता पुराना मिला है।
कहीं 'तूलिका' कोई धोखा न होये,
परिन्दों को मुश्किल से दाना मिला है।

(चार)

दर्दे दिल को सँभाल कर देखो,
थोड़ा अपना भी ख्याल कर देखो।
आएगा ही जवाब, उसका भी,
पहले तुम सवाल कर देखो।
स्वप्न पूरे तो हो ही जाएँगे,
नींद में उनको पाल कर देखो।
सारे प्रश्नों के हल निकलते हैं,
तुम हकीकत में ढाल कर देखो।
प्यार हर सिम्त है, हवाओं में ,
अपने दिल को उछाल कर देखो।
जान वो भी जरूर छिड़केगा,
उसको तुम तो निहाल कर देखो।
'तूलिका' बावली है, सब दुनिया,
तुम भी कुछ बवाल कर देखो।

❖❖❖

तुम मेरे आधार

- कंचन लता मिश्र 'कंचन'

तुम्हीं अकेले नहीं, साथ में, मैं भी आऊँगी,
अपने जन्मों का जो नाता, उसे निभाऊँगी।

इस जीवन की गहन निशा में, तुम मेरे ध्रुवतारा,
तुम मेरे आधार, तुम्हारे हित, यह जीवन सारा।

गाओगे जो गीत, वही मैं भी दुहराऊँगी,
अपने जन्मों का जो नाता, उसे निभाऊँगी।

मंदिर की सुन्दर प्रतिमा सी, तुम मेरी आशा हो,
तुम तुलसी के दीप, तुम्हीं विश्वासी परिभाषा हो।

अपनेपन का बोध, इसी छाया में पाऊँगी,
अपने जन्मों का जो नाता, उसे निभाऊँगी।

तुम मेरे आराध्य, हृदय की श्रद्धा हो, सरबस हो,
तुम्हीं हमारे प्राण, हमारा रूप, हमारा यश हो।

तुमसे अलग, कहाँ अपना अस्तित्व बनाऊँगी।
अपने जन्मों का जो नाता उसे निभाऊँगी।

❖❖❖

नारी

– रमा शर्मा

गुड़िया,
भारतीय नारी,
बस इक,
गुड़िया बेचारी।
लक्ष्मण रेखाओं में
कैद...
आजादी की
इक साँस भी है,
उस पर भारी।
नाम देते हैं, अन्नपूर्णा का,
भूखे पेट –
सोती है, बेचारी।
लड़कों से बराबर दर्जा–
कहने को है,
पर कहाँ जीतने देते हैं, उसे,
ये राजनीति के व्यापारी ।
हर जुल्म सह कर –
मुस्कुराती,
पिता, पति, बच्चों को ही
खुश रखने में –
जीवन बिता देती है, बेचारी।
कहते हैं, ये आजाद है, नारी,
इस आजादी पर तो गुलाम
भी हैं भारी।
धन्य है,
आजाद देश की–
बेचारी,
भारतीय नारी,
नारी,
सब कुछ सहती है, नारी।
फिर भी है, क्यों,
ताड़न की अधिकारी।
क्यूँ मर्दों को सब माफ है,
ये कहाँ का इन्साफ है।
क्यों मर्दों को–
हर गुनाह माफ है,
क्यों नारी को
नहीं मिलता इन्साफ है।
जनम देती है, वो
इन मर्दों को,
क्या यही उसका गुनाह,
नाकाबिले माफ है।
अब और जुल्म नहीं सहना है,
इन मर्दों को भी–
अब सब सहना है।
अब नारी की बारी है,
हिम्मत रख और जाग नारी,
अब आई तेरी बारी है।
बहुत सह लिए तूने जुल्म,
अब मर्दों की सहने की बारी है।
सड़कों पर अब –
बेइज्जत नहीं होगी, नारी,
अब बेइज्जत करने वालों की,
बेइज्जती की बारी है ।।

❖❖❖

गाँव की माटी

- पुष्पा सुमन

बिछा हुआ है, प्यार, गाँव की माटी में।
सपनों का संसार, गाँव की माटी में।।

कभी दिवाली, कभी दशहरा, कभी रंग होली के,
बैसाखी तो कभी ईद है, विविध ढंग बोली के।
हर दिन है, त्यौहार, गाँव की माटी में।।
सपनों का संसार, गाँव की माटी में।।

कबिरा की साखी, आल्हा के बोल, भजन मीरा के,
चौपाई तुलसी की, खुश हैं, गुरुवाणी को पा के।
कविता की रसधार, गाँव की माटी में।।
सपनों का संसार, गाँव की माटी में।।

चाचा, ताऊ, अम्मा–बाबू, दादी, भैया,
चाहे हो गुरुमीत, रमीमा या फिर किसन–कन्हैया।
रिश्तों का संसार, गाँव की माटी में।।
सपनों का संसार, गाँव की माटी में।।

शादी–ब्याह किसी के घर में सारा गाँव मगन है,
कोई दुःख में पड़ा, दुखी सारे जवार का मन है।
अपनापन श्रृंगार, गाँव की माटी में।।
सपनों का संसार, गाँव की माटी में।।

अगर कहीं नफरत है उसको आओ दूर भगायें,
नयी प्रगति के नये पंथ पर मिलकर दीप जलायें।
'पुष्पा' हो उजियार, गाँव की माटी में।।
सपनों का संसार, गाँव की माटी में।।

❖❖❖

एक जिन्दगी

– श्रीमती रश्मि कनौजिया

सड़क किनारे, काँपती, ठिठुरती सी, पड़ी,
अपने जीवन का अहसास कराती।
आँखों में पानी, हाथों में कंपन,
फिर भी जड़ की तरह पड़ी,
राहगीरों को निहार रही थी।
उसे देखा मैंने, तो सहसा कदम रुक गए,
वह भी मुझे कातर दृष्टि से देख रही थी,
उसने काँपते हाथों को उठाकर जोड़ते हुए,
अपनी भीगी हुई आँखों से,
दुःख का अहसास कराती,
वह जिन्दगी, मेरी तरह मुखातिब थी।
उसके इस व्यवहार से मुझे हुआ, अहसास,
शायद उसे है, मुझसे मदद की आस।
पर्स से एक सिक्का निकालकर रख दिया, उसके पास।
दूसरे दिन,
वह जिन्दगी नहीं, मौत,
सड़क किनारे अकड़ी सी पड़ी,
आज भी उसकी आँखें खुली हुईं थीं।
लेकिन उन आँखों में पानी नहीं था,
वह हाथ भी थे, लेकिन उनमें कंपन नहीं था,
उसकी सारी क्रियाएँ मौत खींचकर ले गई थी।
पैसे जो राहगीर डाल गए हों, उसके सामने–
अब भी पड़े थे।
कल का दृष्य सोचकर, मेरे मन में आया विचार,
क्या मानवता का मूल्य है, केवल पैसे दो–चार,

❖❖❖

तेरी कीमत कहाँ से लाऊँ

- सिया सचदेव

मैं बेवफाई के दौर में, अब बता मोहब्बत कहाँ से लाऊँ ,
जो मेरी खातिर लड़े जहां से, मैं वो रिफाकत कहाँ से लाऊँ।

जहां की बेएतनाइयों ने, मुझे भी पत्थर बना दिया है,
करे जो मसरूर, तेरे दिल को ,मैं वो नजाकत कहाँ से लाऊँ।

मेरी अना का जो सर झुका दे, मेरी नजर में मुझे गिरा दे,
हबीब मेरे मुझे बता दे, मैं वो अकीदत कहाँ से लाऊँ।

दिलों के ये मरहले अजब हैं, दिलों के हैं,फैसले अनोखे,
जो तेरी दीवानगी को समझे, मैं वो लियाकत, कहाँ से लाऊँ।

मैं गुरबतों में पली बढ़ी हूँ, मैं गर्दिशे वक्त से लड़ी हूँ,
मैं तुझको कैसे खरीद पाऊँ, मैं तेरी कीमत कहाँ से लाऊँ।

बताओ कैसे मिटेगी दूरी, बताओ कैसे मिलेंगे, ये दिल,
तू मेरी आदत कहाँ से लाये, मैं तेरी फितरत कहाँ से लाऊँ ।

मुझे तो मिट्टी में हाथ अपने अभी बहरहाल सानना है,
जो तेरे अंदर खुदा ने दी है, मैं वो नफासत कहाँ से लाऊँ ।

❖❖❖

कोख, माँ की लजानी नहीं है

- श्रीमती कृष्णा अवस्थी

डर के जुल्मों से, सर को झुकाना,
वीरता की निशानी नहीं है।
बेच दी आत्मा जिसने अपनी,
उसकी आँखों में पानी नहीं है।

लाख तूफान आयें भले ही,
डर के हिम्मत न तुम हार जाना।
तैर कर पार जाना, जो चाहें,
रोक सकती, रवानी नहीं है।

एक जैसे नहीं, लोग सारे,
याचना मत करो तुम, किसी से।
देके सर्वस्व खुद को मिटा दे,
कर्ण–सा कोई दानी नहीं है।

हाथ जोड़े नहीं, मुख न मोड़ा,
प्राण छोड़े, न छोड़ा समर है।
वीर भारत के रण–बाँकुरों की,
बात सच है, कहानी नहीं है।

अंग भारत का कश्मीर है, ये,
स्वर्ग धरती का, प्राणों से प्यारा।
कर रहा आज जो इसका सौदा,
नीच है, स्वाभिमानी नहीं है।

साथ देते हैं, जो पापियों का,
नीच कर्मों से ही जिनका नाता।
छोड़ दी, जिसने इंसानियत भी,
वह लहू हिन्दुवानी नहीं है।

शत्रु देने लगें जब चुनौती,
जुल्म के बढ़ रहे सिलसिले हों।
पस्त कर हौसले, खाक करना,
कोख माँ की लजानी नहीं है।

❖❖❖

हँसी

- सुमन धींगरा

छिपी कहाँ तरंगों सी चंचल, ओ मेरी प्रिय बाल सखी,
ढूँढ़ती फिरूँ, मैं तुझे चहुँ ओर,जीवन डगर हर मोड़।

रूठी हो क्यों, हुआ, मुझसे क्या अपराध, सुरीली सखी,
कल–कल बहती थी, निर्झर सी,अब यूँ गई, क्यों छोड़।

खेली तू कल संग– संग मेरे हुई, मुझसे क्यों बेजार सखी,
भूलीं क्यों मेरा गेह–द्वार, मानिनी सारे स्नेह बंधन तोड़।

लुका–छिपी में मानी, मैंने, अब हार देखो मेरी नन्हीं सखी,
सामने आ आलि बजा मधुर जलतरंग सी आज हर ओर।

मुदित छेड़ेंगे दोनों सुमधुर भूला राग उज्ज्वला सखी,
भरने को सुवासित प्रसूनों से आँचल आ लगायें होड़।

झिमिर–झिमिर बरस सावन की बूँदों सम सुकुमार सखी,
उद्भासित हो प्रिय स्पर्श से तेरे खिले तन–मन पोर–पोर।

झलक दिखा यदा–कदा मत जाना खो मनोहारिणी सखी,
निर्मल छाया तेरी, हरती, विषाद मन का, अवसाद, रोग।

स्मिता बन सजना अधरों पर रहना संग मेरे सलोनी सखी।

❖❖❖

मेरा देश, मुझे लौटा दो

- डा. विद्याविन्दु सिंह

यही भूमि है, जहाँ कभी मानवता अपने पर फूली थी,
यही भूमि है, जहाँ कभी दानवता भी निज भूली थी।
मानव की हर धड़कन में, जो प्यार भरा था, वह लौटा दो।
मेरा देश, मुझे लौटा दो।

जीव जन्तु, पशु–पक्षी, सब में भाई–चारे का रिश्ता था,
फूल,पत्तियों और पौधों से अपनापन सबको मिलता था।
गीतों और कथाओं वाला भारत का वह मन लौटा दो।
मेरा देश,मुझे लौटा दो।

धर्म बड़ा था, मानव के हित, मानव धर्म बड़ा था, सबसे,
भाषा–मजहब दीवार न थे, देश बड़ा ही था, इन सबसे।
सब तनाव ये वापस लेकर सरल, सहज वह मन लौटा दो।
मेरा देश, मुझे लौटा दो।

साहित्य, कला थी, जनहित में, सत्य, शिवं सुखमय था, जीवन,
ओज, वीरता औ करुणा से, पाता जहाँ काव्य संजीवन।
सहज चेतना छुवन सँजोए कवि का कोमल मन लौटा दो।
मेरा देश, मुझे लौटा दो।

स्नेह जहाँ दीपित होकर, मानव–व्यवहार नियंता हो,
झरें न व्यर्थ नयन के मोती, हर आँसू को कन्धा हो।
आँखें देख न पाती जिसको, जीवन का वह सच लौटा दो।
मेरा देश, मुझे लौटा दो।

❖❖❖

माँ

– मनीषा जोशी

मुद्दतों से नहीं नींद आई, मुझे ,
माँ ने जब से न लोरी सुनाई, मुझे ।

माँ तेरा पाक आँचल भी,क्या खूब था,
वो हमेशा लगा इक रजाई, मुझे ।

यूँ मुकम्मल मिरी जिन्दगी हो गई,
माँ ने बातें पते की बताई, मुझे ।

देख, तेरी दुआओं का है, ये असर,
जिन्दगी इस बुलंदी पे लाई, मुझे ।

माँ सलामत रहे, वो है, दौलत मेरी,
उससे प्यारी नहीं ये कमाई, मुझे ।

तू हँसी तो हसीं ये समां हो गया,
घर में दी तुझसे रौनक दिखाई, मुझे ।

जब से खाई तेरे हाथ की रोटियाँ,
फिर नहीं कोई रोटी लुभाई, मुझे ।

दौड़ आऊँ पुकारे 'मनीषा' जो तू ,
आह! भी तेरी देती सुनाई, मुझे ।

❖❖❖

आँखों से मोती बह गये

- मनोज कामदेव

अपने हाथों में जो खुदा का फरमान रखते हैं,
सच कहूँ, वो सबके चेहरों पे भगवान देखते हैं।
किसी की तड़पन अब उनसे देखी जाती नहीं,
तभी अपने जहन में खुला आसमान रखते हैं।
उनकी निगाहों में रहता हूँ, कंकर की तरह,
जब से दिलों में बसता हूँ, शंकर की तरह।
मेरी वो हर बात से खफा–खफा रहते हैं,
मनाने कि अदा में चुभता हूँ, खंजर की तरह।
तरक्की की आँधी में कितने घोसले ढह गये,
पंछी मुंड़ेर पे बैठ के आँखों से मोती बह गये।
जिस शजर पे बैठ के उसने पूरी दुनियाँ देखी,
उसी शजर को काट के सर के साये ढह गये।
कोई यहाँ दिलवालों के लिए जीता है,
कोई यहाँ दिलजलों के लिए जीता है।
और जो किस्मत से मारा–मारा रहता है,
वो यहाँ पे घरवालों के लिए जीता है।

❖❖❖

आज आखिर छला गया

दर्द दिल के जगा गया, कोई,
दूर मीलों चला गया, कोई।

दिख रही थी जहाँ कोई सूरत,
आइना वो, गिरा गया, कोई।

बेइरादा सही, मगर फिर भी,
आज आखिर छला गया, कोई।

रात पलकों के शामियानें से ,
ख्वाब कैसे चुरा गया, कोई।

खेलना, तोड़ना, रुला देना,
शौक अपने बता गया, कोई।

❖❖❖

समन्दर से मिला करता है

- सोमनाथ शुक्ल

आँख से कौन तेरी रोज बहा करता है,
रूह सा कौन, तेरे दिल में रहा करता हैं।

आज दुनियाँ ही अलग एक बना रक्खी है,
रात–दिन ख्वाब, निगाहों से बुना करता है।

धड़कनें रोज शिकायत पे शिकायत करतीं,
कौन हर वक्त, तेरे साथ हुआ करता है।

वो लहर बनके कभी तेज, कभी हौले से,
एक दरिया सा समन्दर से मिला करता है।

मैं गजल हूँ कि रूबाई हूँ कि नगमा कोई,
वो किताबों सा मुझे, रोज पढ़ा करता है।

❖❖❖

ये बात कहो तुम भी

अब दूर नहीं दिल से तो पास रहो, तुम भी,
दिल कुछ न बिना तेरे तो दर्द सहो, तुम भी।

तुम जान हमारी हो, है, नाज हमें, तुम पर,
तुम यार हमारे हो, ये बात कहो, तुम भी।

हमसे न सुना जाता कि झूठ कहा, तुमने,
दे दो न तसल्ली, हमसे बात करो, तुम भी।

वो वक्त नहीं आ सकता लौट, दुबारा जब,
दिल से न सही पर मेरे संग चलो, तुम भी।

बातों – बातों में ही इजहार किया, मैनें,
बातों– बातों में अब इकरार करो, तुम भी।

नजरें तो मिल ही जाती हैं, खुद ही, तुमसे,
अब तो मोहब्बत का अहसास करो, तुम भी।

क्या छूट गया है,ये देखा न कभी तुमने,
तुम हूर परी हो फिर भी इश्क करो, तुम भी।

मिलना जब होगा तब कह 'शुभम्' से देना,
और न ऐसे अब कोई आह भरो, तुम भी।

❖❖❖

क्या माँगना

-शुभम वैष्णव

खत्म जो हो, वो सफर क्या माँगना।
चार कदमों का डगर, क्या माँगना।

दे रहें हैं ,जख्म, अपने ही मुझे,
अब दुआओं में असर, क्या माँगना।

मौत आनी होगी, तो आ जाएगी,
यूँ किसी से अब जहर, क्या माँगना।

तोड़कर घर इन परिंदों के कई,
खुद खुदा से आज घर, क्या माँगना।

गाँव में भी तो मिलें हमको खुदा,
ए खुदा! तेरा शहर, क्या माँगना।

बह रही हो जब नदी इक धार में,
फिर किनारों से लहर क्या माँगना।

जिंदगी तो बस तमाशा है, 'शुभम'
आपका इनसे हुनर, क्या माँगना।

❖❖❖

आलोक यादव की तीन गजलें

(एक)

घर में बेटी जो जनम ले, तो गजल होती है,
दाई बाहों में जो रख दे, तो गजल होती है।

नन्हें हाथों से पकड़ती है, वो उँगली मेरी,
साथ मेरे जो वो चल दे, तो गजल होती है।

उसकी किलकारियों से घर जो चहकता है, मेरा,
सोते–सोते जो वो हँस दे, तो गजल होती है।

थक के आता हूँ, मैं, जब चूर–चूर घर, अपने,
वो जो हाथों में सहेजे, तो गजल होती है।

छोड़कर मुझको वो एक रोज चली जाएगी,
सोचकर मन जो ये सिहरे, तो गजल होती है।

(दो)

जो कह रहा है, दिले–बेकरार, समझा करो,
हमारे लिखे हुए खत को तार, समझा करो।

न होती इश्क में हासिल जो लज्जते–गम भी,
तो करता क्या ये मेरा, कल्बे–जार, समझा करो।

जो राजदारे–मुहब्बत है, बन न जाएँ अदू,
न तुम, हर एक को हामी–ए–कार, समझा करो।

लुटा दिया है, सभी कुछ, पर आह निकली नहीं,
नहीं है इश्क कोई कारोबार, समझा करो।

मलाल मत करो 'आलोक' दिल के जाने का,
हुआ है, दिल पे किसे इख्यियार, समझा करो।

(तीन)

अंजुमन में जो मेरी इतनी जिया है, साहिब,
खूने–दिल मेरे चरागों की गिजा है, साहिब।

बुतशिकन निकला वही, समझा था, जिसको बुतगर,
जिसमें रहता था, वहीं तोड़ गया है, साहिब।

आँख से आँसू चुरा ले गया लेकिन वो शख्स,
बेगुहर सीप यहीं छोड़ गया है, साहिब।

मुझको जन्नत के नजारे भी नहीं जँचते हैं,
शहरे–जानां ही तसब्वुर में बसा है, साहिब।

रेगजारों के सफर पे जो चले तो 'आलोक,
कोई आँखों में लिए अश्क खड़ा है, साहिब।

❖❖❖

सृजन स्मरण

स्व० विष्णु प्रभाकर

जन्म 21 जून, 1912   निधन 11 अप्रैल, 2009

समा जाता है,
श्वास में श्वास।
शेष रहता है,
फिर कुछ नहीं।
इस अनंत आकाश में-
शब्द ब्रह्म ढूँढ़ता है,
पर-ब्रह्म को।

सृजन स्मरण

स्व० शम्भूनाथ सिंह

जन्म 17 जून, 1916 निधन 3 सितंबर, 1991

समय की शिला पर मधुर चित्र कितने, किसी ने बनाए किसी ने मिटाए।
किसी ने लिखी आँसुओं से कहानी, किसी ने पढ़ा किन्तु दो बूँद पानी,
इसी में गए बीत दिन जिंदगी के, गयी धुल जवानी, गयी मिट निशानी,
विकल सिन्धु से, साथ के मेघ कितने, धरा ने उठाए, गगन ने गिराए।
समय की शिला पर मधुर चित्र कितने, किसी ने बनाए, किसी ने मिटाए।।